Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LV (55), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारतीय संघवाद के विकास में न्यायपालिका की भूमिका : प्रमुख संवैधानिक निर्णयों का विश्लेषण

अभिषेक कुमार*

* शोधार्थी (राजनीति विज्ञान) जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण) (बिहार) भारत

शोध सारांश – भारतीय संघवाद की संरचना संविधान द्वारा संघ और राज्यों के बीच विधायी, कार्यपालिका तथा वित्तीय शक्तियों के वितरण पर आधारित है। यद्यपि भारतीय संविधान में संघ को अपेक्षाकृत अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, फिर भी राज्यों को संवैधानिक रूप से निर्धारित क्षेत्रों में स्वायत्ता शासन का अधिकार प्राप्त है। इस संघीय व्यवस्था के संतुलन को बनाए रखने में न्यायपालिका, विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय, की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। भारतीय संघवाद का विकास केवल संवैधानिक प्रावधानों और राजनीतिक व्यवहार से नहीं हुआ, बल्कि न्यायिक व्याख्याओं ने भी इसके स्वरूप और सीमाओं को निरंतर प्रभावित किया है। सर्वोच्च न्यायालय नेकेशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ, एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ, नबाम रेबिया बनाम उपाध्यक्ष, Government of NCT of Delhi v. Union of India जैसे मामलों में संविधान की सर्वोच्चता, न्यायिक समीक्षा, संघवाद, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व और राज्यीय स्वायत्तता से संबंधित महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित किए हैं।

यह शोध–पत्र भारतीय संघवाद के विकास में न्यायपालिका की भूमिका का संवैधानिक एवं न्यायिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का मुख्य तर्क यह है कि सर्वोच्च न्यायालय ने एक ओर संविधान में निहित संघीय शक्तियों के विभाजन की रक्षा की है, वहीं दूसरी ओर भारतीय संविधान की केंद्रीकृत विशेषताओं को भी स्वीकार किया है। इसलिए न्यायपालिका की भूमिका को केवल 'राज्यों के अधिकारों की रक्षक' के रूप में देखना पर्याप्त नहीं होगा। न्यायिक दृष्टिकोण में राष्ट्रीय एकता, संवैधानिक सर्वोच्चता, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व और संघीय संतुलन के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास दिखाई देता है। समकालीन मामलों में यह भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि संघद्दराज्य संबंध अब केवल विधायी अधिकारों तक सीमित न रहकर राज्यपाल की भूमिका, प्रशासनिक नियंत्रण, कराधान, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और संवैधानिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली तक विस्तृत हो चुके हैं।

शब्द कुंजी – भारतीय संघवाद, न्यायपालिका, सर्वोच्च न्यायालय, राज्य स्वायत्तता, संघद्दराज्य संबंध, न्यायिक समीक्षा, अनुच्छेद 356, मूल संरचना, संवैधानिक संघवाद।

प्रस्तावना – भारतीय संविधान ने शासन की ऐसी व्यवस्था निर्मित की है जिसमें राष्ट्रीय एकता और क्षेत्रीय विविधता दोनों को संस्थागत रूप दिया गया है। संविधान का अनुच्छेद 1 भारत को 'राज्यों का संघ' घोषित करता है। संविधान के भाग XI तथा सातवीं अनुसूची में संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण किया गया है, जबकि कार्यपालिका संबंधी प्रावधानों तथा वित्तीय व्यवस्थाओं के माध्यम से संघीय संबंधों को और अधिक स्पष्ट किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार भारतीय संविधान संघ और राज्यों के बीच संघीय शासन–व्यवस्था स्थापित करता है तथा न्यायपालिका को संविधान–विरोधी विधानों और सरकारी कार्रवाइयों की समीक्षा का अधिकार प्राप्त है।[1]

भारतीय संघवाद की विशेषता यह है कि इसमें पारंपरिक संघीय व्यवस्थाओं की तुलना में केंद्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अवशिष्ट विधायी शक्तियाँ संसद को प्राप्त हैं, आपातकालीन परिस्थितियों में संघ की शक्तियाँ बढ़ जाती हैं और कुछ परिस्थितियों में संसद राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है। इसके बावजूद राज्य केवल प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं हैं, वे संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त राजनीतिक इकाइयाँ हैं।एस. आर. बोम्मईके निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने संघवाद को संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में रेखांकित किया और राज्यों को संविधान द्वारा निर्मित संस्थागत इकाइयों के रूप में देखा।[2]

इसी संदर्भ में न्यायपालिका की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। यदि संघ और राज्य दोनों अपने–अपने संवैधानिक क्षेत्रों में कार्य करते हैं, तो उनके बीच उत्पन्न विवादों के समाधान के लिए एक स्वतंत्र संवैधानिक निर्णायक की आवश्यकता होती है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय इस भूमिका को निभाता है। अनुच्छेद 131 संघ और राज्यों के बीच कुछ प्रकार के कानूनी अधिकारों से संबंधित विवादों में सर्वोच्च न्यायालय को मूल अधिकारिता प्रदान करता है।[3] इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 32, 136, 137, 141, 142 और 226 के माध्यम से न्यायिक समीक्षा और संवैधानिक व्याख्या की व्यापक व्यवस्था विकसित हुई है।

अध्ययन की समस्या– भारतीय संघवाद के संदर्भ में मूल प्रश्न यह है कि न्यायपालिका ने संघ और राज्यों के बीच संवैधानिक शक्ति–संतुलन को किस प्रकार प्रभावित किया है। क्या न्यायपालिका ने लगातार राज्यों की स्वायत्तता की रक्षा की है या उसके निर्णयों में कभी–कभी केंद्रीयकृत संवैधानिक संरचना को भी समर्थन मिला है? इसी प्रकार यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि न्यायिक समीक्षा ने संघीय संघर्षों को किस सीमा तक

संवैधानिक संवाद में परिवर्तित किया है।

भारतीय संविधान की संरचना में संघ को कई महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। दूसरी ओर राज्यों को भी अपने निर्धारित क्षेत्रों में विधायी एवं कार्यपालिका अधिकार प्राप्त हैं। इसलिए संघवाद का वास्तविक स्वरूप केवल संविधान के पाठ से निर्धारित नहीं होता, बल्कि न्यायिक व्याख्या, राजनीतिक व्यवहार और संस्थागत संबंधों से भी निर्मित होता है। समकालीन विद्वानों ने भी यह रेखांकित किया है कि भारत में केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया समय के साथ बदलती रही है और न्यायिक निर्णय इस परिवर्तन के प्रमुख साधनों में रहे हैं।[4]

साहित्य समीक्षा

भारतीय संघवाद पर उपलब्ध साहित्य में तीन प्रमुख दृष्टिकोण दिखाई देते हैं। पहला दृष्टिकोण भारतीय संविधान की केंद्रीकृत संघीय संरचना पर बल देता है। दूसरा दृष्टिकोण राज्यों की संवैधानिक स्वायत्तता और संघीय सिद्धांत को प्रमुखता देता है। तीसरा दृष्टिकोण भारतीय संघवाद को एक गतिशील व्यवस्था के रूप में देखता है, जिसमें राजनीतिक परिस्थितियों, दलगत प्रतिस्पर्धा, न्यायिक निर्णयों और संस्थागत परिवर्तन के आधार पर केंद्र–राज्य शक्ति–संतुलन बदलता रहा है।

महेंद्र पाल सिंह ने भारतीय संघीय योजना का विश्लेषण करते हुए विधायी, कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियों के वितरण तथा भारतीय संघवाद के केंद्रीकृत चरित्र पर चर्चा की है। इसी प्रकार हाल के शोध में भारत में 1950 से 2010 के बीच केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की प्रक्रियाओं का अध्ययन किया गया है और यह निष्कर्ष सामने आया है कि संवैधानिक परिवर्तन तथा न्यायिक निर्णय दोनों ने संघीय शक्ति–संतुलन को प्रभावित किया।[5]

Swenden और Rekha Saxena अध्ययन ने विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय की संघीय मामलों में भूमिका का परीक्षण किया है। उनके अध्ययन में राष्ट्रपति शासन, विधायी क्षमता, असममित संघवाद तथा साझा शासन से संबंधित अनेक निर्णयों का विश्लेषण किया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि सर्वोच्च न्यायालय की संघीय भूमिका एकरूप नहीं रही है।[6] इससे यह स्पष्ट होता है कि न्यायपालिका को भारतीय संघवाद का केवल एकतरफा संरक्षक मानने के बजाय उसकी न्यायिक तर्क–पद्धति, संवैधानिक व्याख्या और संस्थागत संदर्भ का विश्लेषण आवश्यक है।

शोध–अंतराल– उपलब्ध साहित्य में भारतीय संघवाद और न्यायपालिका के संबंध पर पर्याप्त अध्ययन मौजूद है, लेकिन अधिकांश अध्ययन किसी एक विशेष संवैधानिक क्षेत्रकृजैसे अनुच्छेद 356, विधायी क्षमता या राज्यपाल की भूमिका पर केंद्रित हैं। इस शोध में प्रमुख संवैधानिक निर्णयों को एक व्यापक क्रम में रखकर यह समझने का प्रयास किया गया है कि न्यायपालिका ने भारतीय संघवाद की अवधारणा को समय के साथ किस प्रकार विकसित किया।

विशेष रूप से यह अध्ययन केशवानंद भारती, मिनर्वा मिल्स, एस. आर. बोम्मई, नबाम रेबियाऔर दिल्ली सरकार से संबंधित निर्णयों को एक व्यापक संघीय विमर्श में जोड़ता है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि न्यायपालिका की भूमिका केवल विवाद–निपटान तक सीमित नहीं है, बल्कि वह संवैधानिक शक्ति–संतुलन के अर्थ को भी प्रभावित करती है।

शोध–पद्धति– यह अध्ययन मुख्यत: गुणात्मक, वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। शोध में प्राथमिक स्रोत के रूप में भारतीय संविधान तथा सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख संवैधानिक निर्णयों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में भारतीय संघवाद पर प्रकाशित पुस्तकों, शोध–पत्रों तथा अकादमिक अध्ययनों को शामिल किया गया है। अध्ययन का केंद्र संघ–राज्य संबंधों से संबंधित संवैधानिक विवाद और उनमें सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्यात्मक भूमिका है।

भारतीय संघवाद और न्यायपालिका का संवैधानिक आधार– भारतीय संघवाद में न्यायपालिका को केवल विवाद निपटाने वाली संस्था के रूप में नहीं देखा जा सकता। संविधान की सर्वोच्चता और न्यायिक समीक्षा का सिद्धांत न्यायपालिका को यह सुनिश्चित करने की शक्ति देता है कि संसद, राज्य विधानमंडल और कार्यपालिका अपनी संवैधानिक सीमाओं के भीतर कार्य करें। सर्वोच्च न्यायालय स्वयं यह स्पष्ट करता है कि संविधान विधायिका और कार्यपालिका दोनों को सीमित करता है तथा स्वतंत्र न्यायपालिका संविधान–विरोधी कानून या सरकारी कार्रवाई को निरस्त कर सकती है।[7]

भारतीय संघवाद के लिए न्यायिक समीक्षा इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि संघ और राज्य दोनों के अधिकार संविधान से उत्पन्न होते हैं। यदि किसी कानून के बारे में यह विवाद हो कि उसे बनाने की शक्ति संसद या राज्य विधानमंडल में से किसके पास है, तो न्यायिक समीक्षा के माध्यम से उस विवाद का समाधान किया जा सकता है। इसी कारण विधायी क्षमता, क्षेत्राधिकार और संवैधानिक सीमाओं से संबंधित मामलों में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका केंद्रीय हो जाती है।

केशवानंद भारतीऔरमूल संरचना का सिद्धांत– भारतीय संवैधानिक न्यायशास्त्र मेंकेशवानंद भारती बनाम केरल राज्यका विशेष महत्व है। इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की संविधान संशोधन शक्ति को स्वीकार करते हुए यह सिद्धांत विकसित किया कि संविधान की मूल संरचना को नष्ट नहीं किया जा सकता।[8] इस सिद्धांत ने संविधान को साधारण राजनीतिक बहुमत से ऊपर एक स्थायी संवैधानिक ढाँचे के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मूल संरचना सिद्धांत का संघवाद पर व्यापक प्रभाव पड़ा। यदि संविधान की संघीय विशेषताओं को मूल संरचना का हिस्सा माना जाता है, तो संविधान संशोधन के माध्यम से संघीय संतुलन को पूरी तरह समाप्त करना न्यायिक समीक्षा के अधीन हो सकता है। इस प्रकार न्यायपालिका ने संविधान संशोधन शक्ति और संविधान की मूल पहचान के बीच एक संवैधानिक सीमा निर्धारित की।

मिनर्वा मिल्सऔर सीमित सरकारी शक्ति– मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघमें सर्वोच्च न्यायालय ने सीमित संशोधन शक्ति और न्यायिक समीक्षा के महत्व को दोहराया। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि संविधान के अंतर्गत कोई भी अंग असीमित शक्ति का अधिकारी नहीं है और प्रत्येक संवैधानिक संस्था को संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर कार्य करना होता है।[9]

संघवाद के संदर्भ में इसका महत्व इसलिए है कि संघ और राज्य दोनों संवैधानिक सत्ता के अधीन हैं। यदि संसद को संविधान से ऊपर मान लिया जाए तो संघीय संतुलन के लिए निर्धारित संवैधानिक सीमाएँ कमजोर हो सकती हैं। इसलिए न्यायिक समीक्षा संघवाद की संस्थागत सुरक्षा से जुड़ जाती है।

State of West Bengal v. Union of India और संघीय संबंध– State of West Bengal v. Union of India भारतीय संघवाद के

प्रारंभिक न्यायिक विमर्श का महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस मामले में न्यायालय ने भारतीय संविधान की संघीय प्रकृति तथा संघ और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की प्रकृति पर विचार किया। न्यायालय ने पारंपरिक संघीय व्यवस्था और भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के बीच अंतर को स्वीकार किया।[10]

इस निर्णय से यह स्पष्ट हुआ कि भारत को किसी विदेशी संघीय मॉडल की हूबहू प्रतिकृति के रूप में नहीं समझा जा सकता। भारतीय संविधान ने राष्ट्रीय एकता और प्रशासनिक प्रभावशीलता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संघ को अपेक्षाकृत अधिक शक्तियाँ प्रदान कीं। इसलिए भारतीय संघवाद का विश्लेषण भारतीय संवैधानिक पाठ और उसकी ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर करना आवश्यक है।

एस. आर. बोम्मईऔर संघवाद की संवैधानिक स्थिति– भारतीय संघवाद के विकास मेंएस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघका स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस निर्णय ने अनुच्छेद 356 के प्रयोग और राज्य सरकारों की संवैधानिक स्थिति पर महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित किए। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि राज्य संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त इकाइयाँ हैं और संघवाद भारतीय संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता है।[11]

इस निर्णय का सबसे महत्वपूर्ण पहलू राष्ट्रपति शासन के संबंध में न्यायिक समीक्षा का विस्तार था। अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति शासन की घोषणा को पूर्णत: राजनीतिक क्षेत्र का विषय मानने के बजाय न्यायालय ने उसके संवैधानिक आधार की समीक्षा की संभावना को स्वीकार किया। इससे संघ द्वारा राज्य की निर्वाचित सरकार को हटाने की शक्ति पर न्यायिक नियंत्रण का सिद्धांत मजबूत हुआ।

एस. आर. बोम्मईका व्यापक महत्व यह है कि इसने संघीय सिद्धांत को केवल शक्तियों के विभाजन तक सीमित नहीं रखा। लोकतांत्रिक सरकार, संवैधानिक शासन और राज्यीय राजनीतिक स्वायत्तता को भी संघीय व्यवस्था से जोड़कर देखा गया। न्यायालय की इस दृष्टि ने अनुच्छेद 356 के प्रयोग को संवैधानिक उत्तरदायित्व के अधीन किया।

विधायी क्षमता और राज्यीय स्वायत्तता– संविधान के अनुच्छेद 245 और 246 तथा सातवीं अनुसूची संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का मूल आधार हैं। राज्य सूची के विषयों पर राज्य विधानमंडलों को सामान्यत: विधायी अधिकार प्राप्त हैं, जबकि समवर्ती सूची में संघ और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। विवाद की स्थिति में अनुच्छेद 254 के अधीन सामान्यत: केंद्रीय कानून को प्राथमिकता मिलती है।[12]

न्यायपालिका ने विधायी क्षमता के विवादों में यह निर्धारित करने का प्रयास किया है कि किसी कानून का वास्तविक विषय क्या है और वह किस संवैधानिक सूची के अंतर्गत आता है। इस प्रकार न्यायिक समीक्षा संघीय सीमा–निर्धारण की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उपकरण बन जाती है। यदि संसद या राज्य विधानमंडल अपनी संवैधानिक सीमा से बाहर जाकर कानून बनाता है, तो न्यायालय उसे चुनौती के अधीन ला सकता है।

Nabam Rebia और राज्यपाल की संवैधानिक भूमिका– नबाम रेबिया बनाम उपाध्यक्षका संबंध अरुणाचल प्रदेश की विधानसभा और राज्यपाल की संवैधानिक भूमिका से था। मामले में राज्यपाल द्वारा विधानसभा सत्र से संबंधित कार्रवाई और उसके राजनीतिक–संवैधानिक प्रभाव पर प्रश्न उठा।[13]

इस मामले ने यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया कि राज्यपाल की संवैधानिक शक्तियाँ किस सीमा तक स्वतंत्र विवेक के आधार पर प्रयोग की जा सकती हैं। राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख है, लेकिन संसदीय शासन व्यवस्था में निर्वाचित सरकार की भूमिका भी केंद्रीय है। इसलिए राज्यपाल की शक्तियों की न्यायिक व्याख्या का सीधा प्रभाव राज्य की लोकतांत्रिक स्वायत्तता पर पड़ता है।

यह मामला संघवाद के उस पक्ष को सामने लाता है जिसमें राज्यीय संस्थाओं के भीतर संवैधानिक पदाधिकारियों की भूमिका भी संघीय संतुलन से जुड़ जाती है। राज्यपाल की नियुक्ति संघीय स्तर पर होती है, जबकि वह राज्य में संवैधानिक दायित्व निभाता है। इसलिए राज्यपाल से संबंधित विवादों में न्यायपालिका को संघीय और राज्यीय दोनों आयामों का संतुलन करना पड़ता है।

दिल्ली सरकार के मामले और सहकारी संघवाद– दिल्ली से संबंधित संवैधानिक विवादों ने संघवाद की एक अन्य जटिलता को सामने रखा। 2023 के संविधान पीठ के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की विशेष संवैधानिक स्थिति तथा निर्वाचित सरकार की भूमिका का विश्लेषण किया। न्यायालय ने दिल्ली की व्यवस्था को एक विशिष्ट असममित संघीय मॉडल के रूप में समझने की आवश्यकता पर बल दिया और केंद्र तथा क्षेत्रीय लोकतांत्रिक सरकारों के बीच सहयोग की संवैधानिक भावना को महत्वपूर्ण माना।[14]

यह मामला यह दिखाता है कि भारतीय संघवाद स्थिर और एकरूप मॉडल नहीं है। संविधान विभिन्न क्षेत्रों के लिए अलग–अलग व्यवस्थाएँ स्वीकार करता है। जम्मू–कश्मीर की पूर्व विशेष संवैधानिक व्यवस्था, पूर्वोत्तर राज्यों के विशेष प्रावधान तथा दिल्ली की विशिष्ट स्थिति इस बात को स्पष्ट करते हैं कि भारतीय संघवाद में असममितता भी एक संवैधानिक साधन है।

न्यायपालिका और संघीय विवादों का समाधान– संघ और राज्यों के बीच विवादों को संवैधानिक ढाँचे में शांतिपूर्ण ढंग से हल करना संघीय व्यवस्था की स्थिरता के लिए आवश्यक है। अनुच्छेद 131 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को संघ और राज्यों के बीच कुछ कानूनी अधिकारों से संबंधित विवादों पर मूल अधिकारिता प्राप्त है।[15]

इस व्यवस्था का महत्व केवल न्यायिक विवाद के समाधान में नहीं है। संघीय व्यवस्था में यदि विवाद का समाधान राजनीतिक शक्ति के आधार पर होने लगे तो कमजोर संघीय इकाई के अधिकार प्रभावित हो सकते हैं। न्यायिक मंच विवादों को संवैधानिक नियमों और कानूनी अधिकारों के आधार पर हल करने की संभावना प्रदान करता है।

हालाँकि न्यायपालिका स्वयं राजनीतिक संस्थाओं का विकल्प नहीं है। संघवाद के अनेक प्रश्न मूलत: राजनीतिक और नीतिगत होते हैं। न्यायपालिका का संवैधानिक दायित्व यह निर्धारित करना है किराजनीतिक निर्णय संविधान की सीमाओं के भीतर हैं या नहीं। इसलिए न्यायिक संयम और न्यायिक सक्रियता के बीच संतुलन भी संघीय न्यायशास्त्र का महत्वपूर्ण प्रश्न है।

न्यायपालिका की भूमिकारू राज्य स्वायत्तता के संदर्भ में मूल्यांकन– भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की संघीय न्यायशास्त्र को एकरेखीय रूप में नहीं समझा जा सकता। एक ओरएस. आर. बोम्मईजैसे मामलों में न्यायालय ने राज्य सरकारों की संवैधानिक स्थिति और संघवाद की रक्षा को महत्व दिया, वहीं दूसरी ओर संविधान की केंद्रीकृत संरचना के कई तत्वों को भी न्यायिक व्याख्या में स्वीकार किया गया है। अकादमिक शोध भी यह दर्शाता

है कि सर्वोच्च न्यायालय के संघीय निर्णयों में अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं।[16]

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि न्यायपालिका की भूमिका 'केंद्र बनाम राज्य' की सरल द्वैधता से अधिक जटिल है। न्यायालय को राष्ट्रीय एकता, संवैधानिक शासन, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व, मौलिक अधिकार और संघीय स्वायत्तता जैसे अनेक संवैधानिक मूल्यों के बीच संतुलन स्थापित करना पड़ता है।

न्यायिक सक्रियता और संघीय संतुलन- न्यायिक सक्रियता ने कई अवसरों पर संघीय संबंधों को प्रभावित किया है। जब न्यायालय किसी संवैधानिक प्रावधान की व्यापक व्याख्या करता है तो उसका प्रभाव केवल संबंधित पक्षों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि भविष्य के संघदराज्य संबंधों के लिए भी मानक स्थापित हो सकता है। अनुच्छेद 141 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होता है।

हालाँकि न्यायिक सक्रियता की सीमा पर बहस बनी हुई है। यदि न्यायपालिका नीति निर्माण के अत्यधिक क्षेत्र में प्रवेश करती है तो शक्तियों के पृथक्करण का प्रश्न उठ सकता है। इसके विपरीत, यदि न्यायपालिका संवैधानिक सीमाओं के उल्लंघन के मामलों में अत्यधिक संयम बरतती है, तो संघीय अधिकारों की न्यायिक सुरक्षा कमजोर हो सकती है। इसलिए भारतीय संघवाद में न्यायिक सक्रियता का मूल्यांकन संवैधानिक संदर्भ में किया जाना चाहिए।

न्यायिक निर्णयों और केंद्रीकरण की प्रवृत्ति- भारत में संघीय केंद्रीकरण की प्रवृत्ति संविधान की मूल संरचना में भी दिखाई देती है। अवशिष्ट शक्तियाँ संसद को प्राप्त हैं और समवर्ती क्षेत्र में केंद्रीय कानून को सामान्यत: प्राथमिकता मिलती है। आपातकालीन प्रावधान तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची पर संसद की विधायी शक्ति भी केंद्र को मजबूत बनाती है। न्यायिक निर्णयों ने इन प्रावधानों की संवैधानिक वैधता को अनेक अवसरों पर स्वीकार किया है।[17]

इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायपालिका ने संघीय सिद्धांत की उपेक्षा की है। बल्कि न्यायिक दृष्टिकोण यह दिखाता है कि भारतीय संविधान में संघवाद और केंद्रीकरण दोनों साथ-साथ मौजूद हैं।एस. आर. बोम्मईने इसी जटिलता को रेखांकित करते हुए भारतीय संघवाद को एक विशिष्ट संवैधानिक व्यवस्था के रूप में समझने में योगदान दिया।

समकालीन संघवाद और न्यायपालिका- समकालीन भारत में संघदराज्य विवादों का स्वरूप अधिक जटिल हो गया है। अब विवाद केवल विधायी सूची या राष्ट्रपति शासन तक सीमित नहीं हैं। कराधान,GST, राज्यपाल की भूमिका, प्रशासनिक अधिकार, राष्ट्रीय राजधानी, केंद्रीय एजेंसियों की कार्यप्रणाली तथा राज्य विधानसभाओं द्वारा पारित विधेयकों पर संवैधानिक प्रश्न सामने आ रहे हैं।

2023 के दिल्ली संबंधी निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने संघीय सहयोग को संवैधानिक शासन के लिए महत्वपूर्ण बताया।[18] इसी प्रकार हाल के न्यायिक विमर्श में राज्यों को अपने संवैधानिक रूप से निर्धारित विधायी क्षेत्रों में नीति निर्धारित करने का अधिकार स्वीकार किया गया है। इससे यह संकेत मिलता है कि समकालीन न्यायपालिका भारतीय संघवाद को केवल शक्ति-विभाजन की व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि संवैधानिक संवाद और सहयोग की प्रक्रिया के रूप में भी देख रही है।

न्यायपालिका की भूमिका की सीमाएँ- न्यायपालिका संघवाद की महत्वपूर्ण संरक्षक संस्था है, लेकिन वह संघीय संबंधों की सभी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती। संघवाद का वास्तविक संचालन राजनीतिक दलों, संसद, राज्य विधानसभाओं, अंतर-सरकारी संस्थाओं, वित्तीय संस्थाओं और प्रशासनिक तंत्र के व्यवहार पर भी निर्भर करता है।

यदि केंद्र और राज्यों के बीच राजनीतिक संवाद कमजोर हो, तो केवल न्यायिक हस्तक्षेप से संघीय तनाव समाप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रत्येक संघीय विवाद को न्यायालय तक ले जाना राजनीतिक संस्थाओं की संवादात्मक क्षमता को कमजोर कर सकता है। इसलिए न्यायपालिका को संवैधानिक सीमा की रक्षा करते हुए लोकतांत्रिक संस्थाओं के कार्यक्षेत्र का भी सम्मान करना आवश्यक है।

विश्लेषण एवं चर्चा- उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भारतीय संघवाद के विकास में न्यायपालिका की भूमिका तीन प्रमुख स्तरों पर रही है। पहला, न्यायपालिका ने संविधान की सर्वोच्चता और न्यायिक समीक्षा के माध्यम से संघ तथा राज्यों सहित सभी संवैधानिक संस्थाओं को संवैधानिक सीमाओं के अधीन रखा। दूसरा, न्यायपालिका ने संघवाद के मूल सिद्धांतोंकृशक्ति-विभाजन, राज्यीय राजनीतिक अस्तित्व और संवैधानिक संतुलन को अनेक महत्वपूर्ण निर्णयों में स्पष्ट किया। तीसरा, न्यायपालिका ने समय-समय पर संघीय संबंधों के नए क्षेत्रों, जैसे राज्यपाल की भूमिका और असममित शासन व्यवस्था, की संवैधानिक व्याख्या की है।

फिर भी न्यायपालिका का दृष्टिकोण हमेशा राज्य स्वायत्तता की ओर एकतरफा नहीं रहा। भारतीय संविधान स्वयं केंद्र को महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्रदान करता है और न्यायपालिका ने संविधान की इस संरचना को स्वीकार किया है। इसी कारण भारतीय संघवाद में न्यायपालिका की भूमिका को 'केंद्रीयकरण के विरुद्ध' या 'केंद्रीयकरण के पक्ष में' किसी एक श्रेणी में रखना उचित नहीं होगा। हाल के अकादमिक अध्ययन भी सर्वोच्च न्यायालय के संघीय निर्णयों में मिश्रित प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हैं।[19]

निष्कर्ष- भारतीय संघवाद के विकास में न्यायपालिका की भूमिका बहुआयामी रही है। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की सर्वोच्चता, न्यायिक समीक्षा, मूल संरचना और संघीय संतुलन से संबंधित सिद्धांतों को विकसित करके भारतीय संवैधानिक व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया है। विशेष रूप सेकेशवानंद भारती, मिनर्वा मिल्सऔरएस. आर. बोम्मई जैसे निर्णयों ने यह स्थापित किया कि संवैधानिक शासन में किसी भी संस्था की शक्ति पूर्णत: निरंकुश नहीं हो सकती।

भारतीय संघवाद की विशिष्टता इस तथ्य में है कि संविधान ने एक मजबूत संघीय केंद्र और संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त राज्यों दोनों को साथ लेकर चलने की व्यवस्था बनाई है। न्यायपालिका इसी जटिल व्यवस्था में संवैधानिक सीमाओं की व्याख्या करती है। उसने कई मामलों में राज्यीय स्वायत्तता की रक्षा की है, जबकि कई अवसरों पर संविधान में निहित केंद्रीय शक्तियों को भी मान्यता दी है। इसलिए न्यायपालिका को भारतीय संघवाद में संतुलनकारी संस्था के रूप में देखना अधिक उपयुक्त है।

समकालीन परिस्थितियों में न्यायपालिका के सामने चुनौती यह है कि वह संघ और राज्यों के बीच संवैधानिक शक्ति-विभाजन की रक्षा करते हुए राष्ट्रीय एकता, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व और संवैधानिक शासन के बीच संतुलन बनाए रखे। भारतीय संघवाद का भविष्य केवल न्यायिक निर्णयों से निर्धारित नहीं होगाय इसके लिए संघ और राज्यों के बीच संवाद, सहयोग और संवैधानिक मर्यादा भी आवश्यक होगी। इस दृष्टि से न्यायपालिका

भारतीय संघवाद की अंतिम और एकमात्र निर्माता नहीं, बल्कि उसके संवैधानिक संतुलन को बनाए रखने वाली एक प्रमुख संस्था है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Supreme Court of India, "Constitution," *Law, Courts and the Constitution*.
2. *S.R. Bommai v. Union of India*, (1994) 3 SCC 1; निर्णय में संघवाद को संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में संबोधित किया गया।
3. Supreme Court of India, "Jurisdiction," Article 131 के अंतर्गत संघ और राज्यों के बीच विवादों की मूल अधिकारिता संबंधी विवरण।
4. "Dynamic De/Centralization in India, 1950–2010," *Publius: The Journal of Federalism* 49, no. 1 (2019): 112–142. अध्ययन में संवैधानिक परिवर्तन और न्यायिक निर्णयों को केंद्रीकरण की प्रक्रिया के प्रमुख साधनों में माना गया है।
5. Mahendra Pal Singh, "The Federal Scheme," in *The Oxford Handbook of the Indian Constitution* (Oxford University Press, 2017); तथा "Dynamic De/Centralization in India, 1950–2010."
6. ˇWilfriedSwenden and RekhaSaxena, "Policing the Federation: The Supreme Court and Judicial Federalism in India," *Territory, Politics, Governance* 10, no. 1 (2022): 12–31.
7. Supreme Court of India, "Constitution," न्यायिक समीक्षा और संविधान की सर्वोच्चता संबंधी आधिकारिक विवरण।
8. *His Holiness KesavanandaBharati v. State of Kerala*, (1973) Supp. SCR 1; Supreme Court of India, "The Basic Structure Judgment."
9. *Minerva Mills Ltd. v. Union of India*, (1980) 3 SCC 625. न्यायालय ने सीमित संशोधन शक्ति तथा न्यायिक समीक्षा के महत्व को संवैधानिक संरचना से जोड़ा।
10. *State of West Bengal v. Union of India*, AIR 1963 SC 1241; संघीय शासन की प्रकृति और संघ-राज्य शक्तियों के संबंध में न्यायालय की चर्चा।
11. *S.R. Bommai v. Union of India*, (1994) 3 SCC 1.न्यायालय ने राज्यों को संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त इकाइयों तथा संघवाद को संवैधानिक सिद्धांत के रूप में संबोधित किया।
12. भारत का संविधान, अनुच्छेद 245, 246, 248 और 254 तथा सातवीं अनुसूचीय Supreme Court of India, "Constitution."
13. *Nabam Rebia v. Deputy Speaker*, (2016) 8 SCC 1; अरुणाचल प्रदेश विधानसभा और राज्यपाल की संवैधानिक भूमिका से संबंधित निर्णय।
14. *Government of NCT of Delhi v. Union of India*, 2023 Constitution Bench judgment; निर्णय में दिल्ली की विशिष्ट संवैधानिक स्थिति, असममित संघीय व्यवस्था और संघीय सहयोग पर चर्चा की गई।
15. Supreme Court of India, "Jurisdiction," Article 131 131 के अंतर्गत मूल अधिकारिता संबंधी विवरण।
16. Swenden and Saxena, "Policing the Federation." अध्ययन ने राष्ट्रपति शासन, विधायी क्षमता, असममित संघवाद और साझा शासन से जुड़े 40 निर्णयों का विश्लेषण किया।
17. *S.R. Bommai v. Union of India*, (1994) 3 SCC 1; भारतीय संविधान की केंद्रीकृत विशेषताओं तथा संघीय शक्तियों के न्यायिक विश्लेषण के संदर्भ में।
18. *Government of NCT of Delhi v. Union of India*, 2023 सर्वोच्च न्यायालय ने संघ और क्षेत्रीय लोकतांत्रिक सरकार के बीच संवैधानिक सहयोग को महत्व दिया।
19. Swenden and Saxena, "Policing the Federation" अध्ययन के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय की संघीय न्यायशास्त्र में एकरूप प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती और न्यायिक सिद्धांतों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

Bibliography:-

1. Government of India. *The Constitution of India*. New Delhi: Government of India.
2. Minerva Mills Ltd. v. Union of India. (1980) 3 SCC 625.
3. Nabam Rebia v. Deputy Speaker. (2016) 8 SCC 1.
4. State of West Bengal v. Union of India. AIR 1963 SC 1241.
5. S.R. Bommai v. Union of India. (1994) 3 SCC 1.
6. Swenden, Wilfried, and Rekha Saxena. "Policing the Federation: The Supreme Court and Judicial Federalism in India." *Territory, Politics, Governance* 10, no. 1 (2022): 12–31.
7. "Dynamic De/Centralization in India, 1950–2010." *Publius: The Journal of Federalism* 49, no. 1 (2019): 112–142.
8. KesavanandaBharati v. State of Kerala. (1973) Supp. SCR 1.
9. Government of NCT of Delhi v. Union of India. Supreme Court of India, 2023.
10. Supreme Court of India. "Constitution." Supreme Court of India.
11. Supreme Court of India. "Jurisdiction." Supreme Court of India.
12. Mahendra Pal Singh. "The Federal Scheme." In *The Oxford Handbook of the Indian Constitution*. Oxford: Oxford University Press, 2017.

****